

## 18. दृष्टा, कर्ता, भोक्ता

जागृत मानव परम्परा में मौलिक अधिकार सम्पन्न दृष्टा, कर्ता, भोक्ता के रूप में प्रमाणित है। सर्वाधिक देशों में ईश्वर, परमात्मा, ब्रह्म, देवी, देवताओं को स्वीकारने के लिए मानसिकता को अध्यात्मवादी तैयार किये हैं। इसके लिए सद्ग्रन्थ भी तैयार हुए और सारे धर्मों के मूल में देववाणी, ईश्वरवाणी अथवा आकाशवाणी के रूप में सद्ग्रन्थों में लिखी हुई सद्वाक्यों को माना गया। इसी को सद्ग्रन्थ माना गया। ऐसी मान्यता के आधार पर ग्रन्थ, ग्रन्थ के आधार पर उपदेश विधि प्रचलित हुई। ऐसे सद्ग्रन्थ तब तैयार हुए जब मानव एक देश के मानव सभी देश के साथ संबंध करने में समर्थ नहीं रहे। जब मानव ऐसा सामर्थ्य सम्पन्न हो गए, एक दूसरे समुदाय एक दूसरे के धर्म ग्रन्थों को अध्ययन करने को तैयार हुए। इसमें पता चला कि जिन बातों को हम अपने धर्म ग्रन्थ के अनुसार स्वीकारते हैं, दूसरे धर्म ग्रन्थ उसको स्वीकारते नहीं हैं। फिर यह ईश्वरवाणी कहाँ है। इस प्रकार से धार्मिक मतभेद उलझता ही गया। सहज रूप में सबको यह स्वीकार होता है कि धर्म ग्रन्थ होना चाहिए साथ में यह भी मानसिकता में स्वयंस्फूर्त कल्पना आती है कि धर्म में कोई विवाद होना नहीं चाहिए, यदि विवाद होता है, तो धर्म ही क्या हुआ! इस प्रकार की तर्क बुद्धि से सोचने वाले मानव भी इस धरती पर हैं ही। इसके बावजूद, निर्विवाद धर्म ग्रन्थ क्या होना चाहिए, यह हमें आदर्शवादी विधि से उपलब्ध नहीं हुआ। भौतिकवादियों के लिए धर्म ग्रन्थ की जरूरत ही नहीं है। इस प्रकार हम साधारण मानव प्रताड़ित होते ही रहे, वह अंतर्विरोध से भी, बाह्य संसार के विरोधों में द्रोह-विद्रोह से, शोषण और युद्ध भय से पीड़ित होते ही रहे। इन सब के मूल में ईश्वर कृपा, देव कृपा को ही मानते आए, किसी भी क्षण हमें किसी भी मुद्दे पर राहत मिली, प्रसन्नता मिली, उसे ईश्वर, देवता या गुरुकृपा माना। इस प्रकार हम सामान्य मानव हर्ष-विषाद को झेलते रहे। स्वयं में विश्वास न तो सामान्य कहलाने वाले, न ही विशेष कहलाने वाले के पास रहा। जबकि हर मानव में विश्वास के आधार पर राहत पाने की बात पहचानने में आती रही है। अभी भी वैसा ही है। जिन परस्परताओं में हम विश्वास कर पाते हैं, उसी में हम राहत पाते हैं। यह भले ही क्षण, दिन, वर्ष क्यों न हो। इसे ही हम ईश्वर, देवता, गुरुकृपा मानकर स्वयं को भुलावा देने का कार्य सदा-सदा करते रहते हैं। जबकि

मानव अपने कल्पनाशीलता कर्मस्वतंत्रता वश ही इस धरती पर अपने मनाकार को साकार करने में सफल हुआ है। यह स्वयं मानव का उपज नहीं है, तो किसका उपज है। चाहे इसे हम समझें, न समझें, सोचा जाना एक आवश्यक मुद्दा है। इसी के साथ मनःस्वस्थता को प्रमाणित करना ही मानव परम्परा में समाधान है।

ध्यान देने का मुद्दा यहाँ यही है कि जो कुछ भी हमारे सम्मुख प्रतिबिम्बित है, उसके मूल में कोई कर्ता पद है कि नहीं, करने वाला है कि नहीं। अगर इसके मूल में कोई कर्ता नहीं है, तो विश्वकर्ता पद का आरोप गलत हो गया। अगर कर्ता नहीं है, तो भोक्ता पद कैसा होगा। यदि ऐसा नहीं है, तब दृष्टा पद का क्या हुआ। यह सब एक के बाद एक प्रश्न उदय होता रहा है। इन प्रश्नों का उत्तर आदर्शवादी विधि से नहीं मिल पाता है।

सहअस्तित्व वादी विधि से जब सोचने-विचारने लगे, निर्णयों को पहचानने लगे, तब पता लगा कि जो कुछ भी सहअस्तित्व में चारों अवस्था के रूप में कार्य कर रहा है, वह सब स्वयं स्फूर्त कर्ता पद में ही है। इस कारण क्रिया स्वयं में श्रम, गति, परिणाम के रूप में विकासक्रम के अर्थ में कार्य करता हुआ स्पष्ट है। इसी क्रम में, परिणाम का अमरत्व, श्रम का विश्राम, गति का गन्तव्य के रूप में जागृति को पहचाना गया। परिणाम का अमरत्व पद विकास के अर्थ में, श्रम का विश्राम, गति का गन्तव्य, जागृति और जागृतिपूर्णता के रूप में पहचानना सम्भव हो पाया है। इस प्रकार मानव स्वयं जागृति पद का ज्ञाता उद्गाता अथवा प्रमाणित करने योग्य इकाई है, यह समझ में आता है। उक्त सभी अध्ययन से यह स्पष्ट हुआ कि सहअस्तित्व में अर्थात् व्यापक वस्तु में संपूर्ण एक-एक वस्तुयें सम्पृक्त रहने से ऊर्जा सम्पन्नता, बल सम्पन्नता वश, स्वयं स्फूर्त विधि से क्रियाशील होना, इसके लिए कोई कराने वाले का जरूरत न होना पाया गया। छोटे से छोटे, बड़े से बड़े सभी रचनायें अपने आप में क्रियाशील रहना देखने को मिला। ऐसी क्रियाशीलता ही श्रम, गति, परिणाम के रूप में, यही विकासक्रम में परिणाम का अमरत्व विकास पद से ख्यात होना समझ में आ गया। इसकी गवाही गठन पूर्ण परमाणु पद ही है, चैतन्य पद ही है। विकास क्रम में कर्ता पद स्पष्ट था। चैतन्य पद में जागृति क्रम में जीवन और शरीर के संयुक्त रूप में जीव संसार और भ्रमित मानव परम्परा में जीने की आशा, विचार, इच्छा स्पष्ट हो गई। जीने की आशा को स्पष्ट करते हुए चाहना, न चाहना प्रमाणित हो गयी। इसी के साथ चाहत के रूप में अर्थात् जीने

की चाहत के साथ सुखी होने का चाहत मानव से प्रकाशित हुई। इसके लिये मनाकार को साकार करना सम्भव हो गया। इससे यह सुस्पष्ट हो जाता है कि सुखी होने की मानसिकता, खुद की इच्छा के रूप में मानव में प्रगट हुई। इसके आधार पर पहले से कर्ता पद रहा, भोक्ता पद की अपेक्षा हुई, सुख भोगने की अपेक्षा हुई। इसके लिए दृष्टा पद का उदय होना अवश्यंभावी हो गया। ऐसा दृष्टा पद प्रतिष्ठा का प्रमाण ही है, समझदारी। समझदारी ही दृष्टा पद, ज्ञान तत्व के साथ ज्ञाता के रूप में प्रतिष्ठा सम्पन्न होना पाया गया। इस विधि से दृष्टा, कर्ता, भोक्ता पद को मानव ही प्रमाणित करता है। मानव, जीवन और शरीर का संयुक्त रूप में ही वैभवित रहना पाया जाता है। चैतन्य इकाई की महिमा दृष्टा, ज्ञाता पद सम्पन्नता को प्राप्त कर लेना ही है। फलस्वरूप, प्रमाणित करने के अर्थ में मानव परम्परा में प्रमाणित करता हुआ कर्ता, भोक्ता पद में मानव वैभवित होना पाया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट हो गया भौतिक, रासायनिक संसार स्वयं स्फूर्त कर्ता पद में, चैतन्य पद जीवन अपने जागृति सम्पन्नता सहित दृष्टा, ज्ञाता के रूप में होना पाया गया। दृष्टा, ज्ञाता के रूप में कर्ता पद का उपयोग, सदुपयोग, प्रयोजनशीलता विधि से जीवनाकाँक्षा, मानवाकाँक्षा को प्रमाणित करने का सौभाग्य उदय होता है। इसके विपरीत भ्रमित रहने से, समस्याओं से, क्लेशित होना होता है। जहाँ तक रासायनिक, भौतिक संसार है, यह विकासक्रम में यथास्थिति में परिणामशीलता के आधार पर स्पष्ट हुई है। इस प्रकार कर्ता पद के साथ भोक्ता पद बना ही है। क्योंकि परिणाम का स्वरूप अनेक यथास्थिति में दिखाई पड़ता है। देखने का मतलब समझना ही है। समझना संपूर्ण वैभव, महिमा जीवन में होना पाया जाता है। इस प्रकार, चैतन्य संसार में दृष्टा पद प्रतिष्ठा जुड़ गयी। यह जागृति के फलस्वरूप स्पष्ट हुई। यही मुख्य मुद्दा है। ऐसे सम्पूर्ण रासायनिक, भौतिक क्रिया में, जीव संसार में, भ्रमित मानव में कर्ता, भोक्ता होने का गवाही सदा-सदा से बना ही है। इसीलिए, मानव कर्ता दृष्टा पद पूर्वक ही सार्थक सुफल होने की व्यवस्था है। भ्रमित अवस्था में नहीं। अस्तु, दृष्टा पद जागृत परम्परा का ही महिमा होना स्वभाविक है। इसलिए मानव परम्परा को बनाये रखना हम सब मानव के लिये सर्व शुभकारी सूत्र है, व्याख्या है।

**नित्यम् यातु शुभोदयम्**